(बारह भावना)

झूठे जग के सपने सारे, झूठीं मन की सब आशायें।
तन–जीवन–यौवन अस्थिर है, क्षण–भंगुर पल में मुरझायें।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत–काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?
संसार महादुखसागर के, प्रभु दुखमय सुख–आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन–कामिनी प्रासादों में।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन–धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीनेवाला हूँ।
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़–काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
दिन–रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें।।
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या।।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय–तम सत्वर टल जाये।
बस ज्ञाता–द्रष्टा रह जाऊँ, मद–मत्सर–मोह विनश जाये।।
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।